हिन्दी काव्यों में पर्यावरणीय सतर्कता और हृदयस्पर्शी अभिव्यंजना

-मनोज कुमार रजक

प्रस्तावना: भारतीय संस्कृति सदैव पर्यावरण की पोषक रही है। पर्यावरण है तो हम हैं। पर्यावरण के साथ खिलवाड़ करेंगे तो हमारे साथ भी प्रकृति खिलवाड़ कर सकती है। इससे पूरे संसार का ही अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। वेदों, उपनिषदों आदि ग्रन्थों में मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए पर्यावरण को बहुत महत्व दिया गया है। मनुष्य जब से इस पृथ्वी में क़दम रखा है तब से अपने समक्ष प्रकृति-पर्यावरण को ही पाया है। पर्यावरण का मानव के साथ अटूट और अन्योन्याश्रय संबंध रहा है। मानव जीवन एवं पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय हैं। जहां मानव का अस्तित्व पर्यावरण से है वहीं मानव द्वारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण नियंत्रण व विनाश से हमें अपनी भविष्य की चिंता सताने लगी है। 'पर्यावरण' शब्द का संकुचित अर्थ में देखना न्यायोचित नहीं होगा इसे हमें व्यापक अर्थ के संदर्भ में समझना होगा। पर्यावरण के अंतर्गत पूरा ब्रह्मांड समाया हुआ है। 'पर्यावरण' शब्द (परि + आवरण) से मिलकर बना है 'परि' का अर्थ होता है 'हमारे चारो ओर' और 'आवरण' का अर्थ होता है 'ढकना' या 'घेरा' अर्थात् प्रकृति में हमारे चारो तरफ जो कुछ तत्व (वायु, जल, अग्नि, आकाश, पेड़-पौधे, तथा जीव-प्राणी आदि) फैला हुआ है; वह सभी तत्व पर्यावरण के अंग हैं। प्रकृति में वायु, जल, मिट्टी, पेड़- पौधों, जीव जंतुओं का जो संतुलन विद्यमान है, साधारण तौर पर उसे ही हम पर्यावरण कहते हैं। हिन्दी साहित्य में विमर्श का दौर जो चला है, उसकी आवश्यकता आज भी बरक़रार है। पर्यावरण विमर्श को लेकर समकालीन दौर में हिंदी साहित्य के रचनाकार कविता, कहानी, उपन्यास व अन्य विधाओं में चिंता-चेतना-चिंतन के समीकरण से गुजर रहें हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन युग से ही धर्म, दर्शन, कला और साहित्य जैसे सभी क्षेत्रों में प्रकृति को विशेष महत्व मिला है, परन्तु काव्य ने उसे सबसे ऊंचे मुक़ाम तक पहुंचाया है। यूरोप की तुलना में भारतीय संस्कृति हमेशा प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने की परंपरा बनाई है, किन्तु यूरोप की औद्योगिक क्रांति, विश्व युद्ध, शीत युद्ध, परमाणु परीक्षण, पूँजीवादी विकास, ओजोन क्षरण, वैश्वीकरण, वैज्ञानिक उन्नति

आदि ने प्रकृति के साथ हमारे रिश्तों को नष्ट करने में विशेष भूमिका निभाई है। मानव जाति की एकपक्षीय विकास ने प्रकृति को बहुत नुकसान पहुँचाया है। इसी वजह से पर्यावरण को बचाने की बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है। यही पर्यावरण विमर्श की आधारभूमि है। अजय तिवारी लिखते हैं- *''आज के पर्यावरणवादी सरोकार ने हमें सचेत कर दिया है कि प्रकृति का विनाश करके मनुष्य भी सुरक्षित नहीं रहेगा। पानी की तंगी, पर्यावरण का प्रदूषण, बढ़ती गर्मी, पिघलता बर्फ आदि मनुष्य समाज के लिए नहीं ब्रह्माण्ड के समस्त जीव-जालों और वनस्पतियों के लिए खतरे हैं।''*[1] प्रकृति के सभी उपादानों जल, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं को पूज्य मानने की परंपरा रही है जो पर्यावरण के संरक्षण से जुड़ी है। प्राचीन युग में कोई राष्ट्रीय वन नीति या पर्यावरण संरक्षण पर काम करने वाली संस्थाएँ नहीं थीं। पर्यावरण का संरक्षण हमारे नियमित क्रिया-कलापों से ही जुड़ा हुआ था। पहले प्रकृति को ज्ञानस्थली, तपोस्थली तथा कर्मस्थली माना जाता था। भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। प्राचीन युग में ऋषि मुनियों का आश्रय और ज्ञान का केन्द्र ही वनों में होता था। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'कुटज' में लिखते हैं- 'यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इसीलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हूँ।' (द्विवेदी 32) इस प्रकार हिन्दी साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य के माध्यम से प्रकृति से तादात्मय स्थापित कर प्राकृतिक विध्वंस को रोकने और प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान करने की प्रेरणा दिया है।

हिन्दी साहित्य के अलग-अलग कालों में प्रकृति आलम्बन, उद्दीपन, सखी, सहचरी, उपदेशक आदि के रूप में चित्रित हुआ है, पर वर्तमान परिस्थिति में प्रकृति चित्रण के स्वरूप में विशाल परिवर्तन आया है। आज प्रकृति केवल आलम्बन, उद्दीपन, सखी, सहचरी एवं उपदेशक के रूप में ही चित्रित नहीं हो रही है, बल्कि पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न रूपों जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, प्रकाश प्रदूषण, मिट्टी प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण से मानव जीवन के साथ-साथ समस्त जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधों, नदी-तालाबों, पर्वत-पहाड़ों एवं मौसम-जलवायु पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का भी चित्रण हो रहा

है। मनुष्य की अदम्य लालसाएँ ही पर्यावरण प्रदूषण की मूल वजह है। इस प्रकार आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक पर्यावरणीय दृश्य हमें हिन्दी साहित्य के अलग-अलग विधाओं में देखने को मिलता है। समकालीन दौर में आए पर्यावरणीय चर्चा पहले के पर्यावरणीय चित्रण से पूरी तरह से भिन्न है। भिन्न इस मायने में है कि आधुनिक काल तक जो पर्यावरण के संबंध में हिन्दी साहित्य में लिखा गया, वह पर्यावरण-विमर्श के तहत नहीं लिखा गया है। वहाँ मात्र उद्दीपन या आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण हुआ है। समकालीन दौर में जो साहित्य लिखा जा रहा है, उसमें पर्यावरण विमर्श सम्मिलित है। पर्यावरण में आए असंतुलन ने पर्यावरण विमर्श को जन्म दिया ऐसा कहना गलत नहीं होगा।

हिन्दी साहित्य की काव्य परंपरा में आदिकाल से लेकर समकालीन युग तक पर्यावरण से जुड़ी रचनाएं वृहद मात्रा में उपलब्ध है। हिन्दी के आदिकाल में रासो साहित्य में प्रकृति का आलम्बन एवं उद्दीपन के रूप में चित्रण हुआ है। भक्तिकालीन कवियों की उपासना या साधना में आध्यात्मिक तन्मयता व एकनिष्ठता का भाव विद्यमान रहा है। ऋग्वेद के अनेक सूक्त, रामायण, महाभारत के आख्यान, सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य एवं पाश्चात्य साहित्य की सर्जनाएँ प्रकृति से ही आरम्भ होती है। तुलसीदास ने रामचरितमानस के 'किष्किन्धा काण्ड' में यह लिखते हैं कि-

'क्षिति जल पावक गगन समीरा,
पंच रचित अति अधम सरीरा।'

अर्थात् हमारा शरीर पंचतत्व - पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु से मिलकर निर्मित हुआ है। यह पंचतत्व पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं। पर्यावरण तो मानव के तन व मन दोनों में व्याप्त है। इसके अभाव में मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। मानव जाति पूर्णतः प्रकृति के ऊपर निर्भरशील है। मानव जाति की प्रेरणा प्रकृति की सहभागिता और साहचर्य से प्राप्त है। वह प्रकृति के रूप, रस, सौंदर्य एवं गंध से अभिभूत होकर ही कला एवं साहित्य की मर्मज्ञता को जान पाने में सक्षम हुए हैं। प्रकृति को धर्म, दर्शन, कला एवं साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तिकालीन कवियों में तुलसी, कबीर,

रहीम, गुरुनानक, रविदास, जायसी आदि जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं के जरिए प्रकृति के प्रति प्रेम, रुचि और चिंतन का बोध दिखाया है।

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति की सौन्दर्य को निरूपित किया है। भूषण, केशवदास, बिहारी, देव, पद्माकर, सेनापति, आलम, घनानन्द आदि कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य चित्रण के साथ-साथ प्रकृति के प्रति चिंता का भाव भी प्रकट किया। सूखा और जल संकट को निरूपित करते हुए कवि भूषण लिखते हैं –

'सूखे वन, झरे वृक्ष, नदियाँ नीर विहीन।'

इस प्रकार हम देखते कवि भूषण ने तत्कालीन वास्तविक पर्यावरणीय समस्या को बड़े ही सार्थक तरीक़े से उठाया है। आगे चलकर आधुनिक हिन्दी कवियों में श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्यों का चमत्कारी चित्रण हुआ है। कवि श्रीधर पाठक ने 'कश्मीर की सुषमा' कविता में प्रकृति के स्वरूप का बड़ा ही मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया है तो वहीं अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'प्रिय-प्रवास' (महाकाव्य) में राधारानी की हृदय व्यथा का प्रकृति के उपादानों के माध्यम से हृदयस्पर्शी अभिव्यंजना किया है। छायावादी काव्य प्रकृति-पर्यावरण के वर्णन से भरा पड़ा है। इस युग की कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्यों के साथ-साथ पर्यावरणीय ख़तरे की ओर भी संकेत देखने को मिलता है। जहाँ एक ओर 'प्रकृति' प्रेयसी, सखी, सहचरी एवं मानवीकरण के रूप में चित्रित हुआ है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति के भयावह रूप को भी दर्शाया गया है। हिन्दी साहित्य में 'कामायनी' संभवतः पहली रचना है जिसमें प्रकृति और पर्यावरण को विविध नजरिए से प्रस्तुत किया गया है। 'कामायनी' में प्रसाद ने सृष्टि के विनाश की कथा को बयां किया है। पर्यावरण में होने वाली समस्याओं व असंतुलन पर विचार करते हुए उन बिन्दुओं को रेखांकित किया गया है कि

'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भींगे नयनों से, देख रहा था प्रलय-प्रवाह।'[2]

इस प्रकार जयशंकर प्रसाद के 'कामायनी' में प्रकृति के विकराल रूप का चित्रण हुआ है। प्रकृति के विकराल रूप से समस्त मानव जाति का विनाश हो जाता है और अंत केवल मनु और श्रद्धा का अस्तित्व रहता है। इसके अतिरिक्त महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविताओं में प्रकृति का सूक्ष्म और उत्कृष्ट रूप देखने को सहजता से मिल जाता है। कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने भी 'संध्या' की बेला को एक सुंदरी के रूप में वर्णन करते हुए कहते हैं-

'दिवसावसान का समय मेघमय आसमान से उतर रही है।
वह संध्या सुन्दरी परी-सी, धीरे, धीरे, धीरे।'

इस प्रकार सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला कविताओं में प्रकृति का अनोखा मनोरम दृश्य देखने को मिल जाता है।

आधुनिकता के दौर में प्राकृतिक सौन्दर्य और उसके अस्तित्व पर काले बादल मंडराने लगे हैं। नागार्जुन ने अपनी कविता 'फूले कदंब' के द्वारा कहते हैं –

"सावन बीता
बादल का कोप नहीं रीता
जाने कब से वो बरस रहा
ललचाई आँखों से नाहक
जाने कब से तू तरस रहा
मन कहता है छू ले कदंब।"[3]

'फूले कदंब' में पर्यावरणीय समस्याओं को उजागर किया गया है जिसमें जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा भूमि प्रदूषण मुख्य रूप से शामिल हैं, जो भारत की प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं को दर्शाता है। इस कविता में पर्यावरण-चिंता, मानवीय गतिविधियों और जलवायु परिवर्तन होने की वजह से पर्यावरण के वर्तमान और भविष्य की ओर इंगित करते हैं। यह इशारा प्राकृतिक संसाधनों का सटीक उपयोग और उनके संरक्षण से जुड़ा है। प्रकृति

के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करते हुए केदारनाथ सिंह ने पानी के संकट के ऊपर अपनी कविता 'पानी की प्रार्थना' में लिखते हैं-

"अन्त में प्रभु
अन्तिम लेकिन सबसे जरूरी बात
वहाँ होंगे मेरे भाई-बन्धु
मंगल ग्रह या चाँद पर
पर यहाँ पृथ्वी पर मैं
यानी आपका मुँह लगा यह पानी
अब दुर्लभ होने के कगार पर तक
पहुँच चुका है।"[4]

बढ़ते हुए प्रदुषण की वजह से पर्यावरण असंतुलित होता जा रहा है जिसके प्रति कवि ने चिंता जताया है। आज इस संकट के दौर में हिन्दी कवियों में चिंता की भावना जागृत होना स्वाभाविक भी है जिसमें त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, अरुण कमल, ज्ञानेंद्रपति, अशोक पजपेयी, लीलाधर मंडलोई, मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, शिशुपाल सिंह जैसे कवियों ने अपनी कविताओं में बखूबी दर्शाया है।

ज्ञानेंद्रपति ने पर्यावरणीय समस्या को एक जीवंत मुद्दा के रूप में बड़ी संवेदनशीलता के साथ उभारा है। उन्होंने पर्यावरणीय समस्या को एक गंभीर विषय के रूप में अपनाकर ज्वलंत विषय बनाया है। पर्यावरण विमर्श से जुड़ी उनकी कई कविताएं हैं जो जो लोगों में चेतना और जागरूकता फैलाने का कार्य कर रही है। वह गंगा प्रदूषण या पर्यावरण प्रदूषण के दृश्य को दर्शाते हैं-

"गंगा मे स्नान कर रही
वह बूढी मैया…
अपने प्राणों तक को प्रक्षालित कर रही है, पवित्र कर रही है
महाप्रस्थान-प्रस्तुत, डगमग पांवों वाली वह बूढी मैया

तुम क्या जानों, क्योंकि तुम्हारे लिए नहीं बची है कोई पवित्र नदी
तुम्हारी सारी नदियाँ अपवित्र हो गई हैं-विषाक्त
तुम्हारे हत्पिंड की गंगोत्री सूख ही गई है
पीछे और पीछे खिसकती,आख़िरकार"[5]

इसमें कवि बताते हैं कि आज नदियों की स्वच्छता व पवित्रता मलिन हो गई है। इसमें कवि ने एक बूढी, जर्जर स्त्री की गंगास्नान की आखिरी इच्छा के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण भी को दर्शाया है। जल, जंगल, जमीन, हवा, प्रकाश, अंधकार, अग्नि, जीव-जंतु, खनिज पदार्थ आदि हमारे पर्यावरण के अभिन्न अंग है। आज संकट उसी पर मंडरा रहा है। इसके लिए आवश्यक है कि हम आधुनिकता के दौर में प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके प्रकृति को सर्वोपरि रखकर पुनः उसे प्रतिष्ठित करें। कवि ज्ञानेंद्रपति ने अपनी कविताओं के जरिए प्रकृति की भयावह त्रासदी का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार वर्तमान समय मे अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों की तरह पर्यावरण के मुद्दें महत्वपूर्ण बन गए हैं। पर्यावरण मनुष्य के बाहरी जीवन के साथ-साथ शरीर के भीतर-बाहर भी समाहित है। इसलिए आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के रचनाकारों ने इसे अपनी कविताओं में भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया है।

आज आधुनिकता के दौर में भूमंडलीकरण, औद्योगिक क्रांति और बाजारवादी संस्कृति ने जिस रफ़्तार के साथ प्रकृति का दोहन व शोषण किया है; वह अतीत की कवियों ने इतना ज़्यादा अनुमान भी नहीं लगाया होगा। इन सबको उजागर करते हुए अपनी कविताओं में वीरेन डंगवाल की 'बच्चा और गौरैया' कविता में पर्यावरणीय संवेदना को मुखरित करते हुए लिखते हैं-

'इस तरह बदहवास
मत टकराओ गौरैया
खिडकी के कांच से
शीशे से

तुम्हारी चोंच टूट जाएगी
और नाखून उलट जाएंगे।'

पहले गौरैया प्रकृति की शान और चहचआहट की प्रतीक मानी जाती थी। बड़े-बड़े निर्माण कार्य और शहरीकरण ने गौरैया को मानों विलुप्त ही कर दिया है। आज प्रकृति शहरों के लिए एकदम अजनबी जैसा महसूस कर रही है। प्रकृति के बिगड़ते संतुलन को अपनी कविता के जरिए वीरेन डंगवाल जी ने बख़ूबी ही बताया है।

कवि लीलाधर मंडलोई के काव्य संसार में पर्यावरण के संवर्धन और संरक्षण की चिंता एक प्रमुख प्रश्न है। आज तमाम संगठन एक तरफ पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेक सभाएं व सम्मेलन किए जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर बाज़ारवादी नामक गिद्ध पर्यावरण का अंधाधुंध दोहन व शोषण भी कर रहा है। ऐसे में पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रतिबद्ध कवि मंडलोई ने लोगों की सुरक्षा और पर्यावरण की महत्ता को बताते हुए अपनी 'आपत्ति' कविता के माध्यम से कहते हैं-

"मेरी उम्र सात ही बरस सही
दिमाग न हो दिग्गजों जैसा, मगर हक है मेरा कहना
अगर रेगिस्तान में बहे लहू का दरिया
अगर समुद्र में मरे अनगिनत जल-जीव
अगर जल उठें पेड़, पौधे, पत्तियाँ
अगर हवा में घुले ज़हर ओर-छोर
और कोई अगर चाहे करना इस धरती को नेस्तनाबूद
मुझे आपत्ति है,सख्त आपत्ति''[6]

व्यापक मायने में पर्यावरणीय सुरक्षा और संवर्धन के बिना मानव की सुरक्षा और उसके अस्तित्व की बात करना अंधेरे में तीर चलाने जैसा है। आज मानव अपनी सुख-सुविधा और अंधाधुंध विकास के लिए जलवायु को क्षतिग्रसित कर दिया है, जिसकी वजह से रोग और महामारी अपना साम्राज्य फैला रहा है। अभी हाल के समय में कोरोना का कहर सबसे

बड़ा उदाहरण है। इस वैश्विक महामारी के चलते लाखों-लाख लोगों ने ऑक्सीजन की कमी के कारण अपने प्राण गवा दिए हैं। इस प्रकार लीलाधर मंडलोई जी की कविताएं लोगों में जनचेतना जगाने का कार्य करती है।

प्रकृति का मनमाने ढंग से प्रयोग और पृथ्वी के प्रति असहिष्णुता का व्यवहार ने एक चिंताजनक परिस्थिति को पैदा किया है। प्रगति की दौड़ में भूमि का विसंगतिपूर्ण प्रयोग ने उसकी दुर्दशा बना दी है जिससे पृथ्वी विषाक्त होता चला जा रहा है। 'निर्मला पुतुल' पृथ्वी के प्रति अपने दुख को व्यतीत करते हुए अपनी 'बूढ़ी पृथ्वी का दुख' शीर्षक कविता में लिखतीं हैं कि-

"थोड़ा सा वक्त चुराकर बतियाया है कभी
कभी शिकायत न करने वाली
गुमसुम बूढ़ी पृथ्वी से उसका दुख?
अगर नहीं तो क्षमा करना।
मुझे तुम्हारे आदमी होने में संदेह है।"[7]

वह अपनी पंक्तियों के माध्यम से यह बताने का प्रयास करती हैं कि इन्सान पृथ्वी का जिस प्रकार प्रयोग कर रहे हैं लगता है कि मानों वह जवान से बूढ़ी बनने के लिए कोई कोर कसर नहीं छोड़ना चाहती है। आज़ प्रदूषण ओजोन परत में घूलित प्रदूषण इस पृथ्वी का कफन तैयार कर रही है। इस प्रकार निर्मला पुतुल पर्यावरण के प्रति लोगों को सावधान करने का कार्य की हैं।

निष्कर्ष : वर्तमान दौर में पूरे विश्व को लगातार अगर किसी समस्या से सबसे ज्यादा ग्रस्त किया है वह है आधुनिकीकरण, नगरीकरण, औद्योगिकीकरण और बाजारीकरण से बढ़ता 'पर्यावरणीय असंतुलन'। आज विश्व भर के समस्त देशों ने पर्यावरणीय विमर्श को विशेष महत्व दिया है। पर्यावरण को संतुलित करने के लिए नायाब तरीक़े लाए जाने का प्रयास किया जा रहा है। आज पर्यावरणीय मुद्दे विमर्श के रूप में कार्य कर रही है जिसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर भी विचार-विमर्श किया जा रहा है। प्राचीन

काल से, सभी काल में कविताओं के माध्यम से प्रकृति का वर्णन किया जाता रहा है। वर्तमान परिवर्तनशील परिस्थितियों को केन्द्र में रखकर विभिन्न कवियों ने अपने-अपने तरीक़े से, समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरणीय चेतना एवं जागरूकता का बड़े ही सजीवता के साथ चित्रित किया है। आए दिन बढ़ते हुए प्रदुषण के कारण पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता जा रहा है जिसके प्रति बुद्दिजीवी, सामाजिक कार्यकर्ता, वैज्ञानिक, सामान्य नागरिक आदि की तरह कवि और साहित्यकार भी काफी चिंतित हैं। वे अपनी कविताओं व रचनाओं के जरिए पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता जताया है। समकालीन कविता वास्तव में पर्यावरण त्रासदी का युग है जिसे अनेक कवियों ने अपने काव्य का प्रमुख विषय बनाया है। हिंदी के लगभग सभी साहित्यकारों ने विविध विधाओं के जरिए पर्यावरणीय उद्दे और उनकी गहरी संवेदना को हमारे समक्ष प्रस्तुत करने का कार्य किया है। अगर हमें स्वस्थ वातावरण और बेहतर समाज चाहिए तो पर्यावरण को संतुलन बनाए रखना परम आवश्यक है। आज मानव अपने भोग-विलास एवं सुख की प्राप्ति के लिए प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहा है, जिसका खामियाजा हमें तो भूगतना होगा। आज असमय बारिस, बाढ़, भूकंप, भू-संखलन, ग्लेशियर पिघलना, महामारी का प्रकोप आदि जैसे विपदाएँ हमें प्रकृति के प्रति सचेत करती है। अतः हमारी भावी पीढ़ी को बचाने के लिए पर्यावरणीय सतर्कता और हृदयस्पर्शी अभिव्यंजना अति आवश्यक है।

सहायक संदर्भ सूची:

1. उषा नायर (संपा.) : पारिस्थितिक संकट और समकालीन रचनाकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ संख्या- 128-129.

2. प्रसाद जयशंकर, कामायनी, संजय बुक सेन्टर, वाराणसी, 1992, पृष्ठ संख्या-43.

3.नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या-70,

4. सिंह केदारनाथ, पानी की प्रार्थना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या-109.

5. सुमेष ऐस. ए. (संपा.), समकालीन हिन्दी साहित्य में पर्यावरण विमर्श, पृष्ठ संख्या-21.

6. मंडलोई लीलाधर, रात बिरात, आधार प्रकाशन, हरियाणा, 1995, पृष्ठ संख्या-79.

7. पुतुल निर्मला, बूढ़ी पृथ्वी का दुख, नगाड़े के तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-31, 32

मनोज कुमार रजक,
शोधार्थी (पीएच.डी.), कलकत्ता विश्वविद्यालय,
एम.ए.(हिंदी), एम.फिल., कलकत्ता विश्विवद्यालय, नेट (हिंदी),
मो. नं. – 7685918656 ई.मेल- mkrajak22@gmail.com